कितने सुरक्षित हैं हमारे नौनिहाल विद्यालयों में

शारदा कुमारी*

अभिभावक अपने बच्चों को विद्यालय भेजते हैं ताकि उनके बच्चे सभ्य, सुसंस्कृत, आत्मविश्वासी, आत्मनिर्भर बनें और यह भी अपेक्षा करते हैं कि विद्यालय का वातावरण उन्हें मानसिक स्तर पर मज़बूत करेगा, जिससे उनके मनोबल में वृद्धि होगी। अभिभावक विद्यालय प्रशासन पर आँख बंद कर के विश्वास करते हैं। वे मान लेते हैं कि विद्यालय में उनके बच्चे सुरक्षित हैं तथा उन्हें जो भी सामग्री प्रदान की जा रही है वह उनके स्वास्थ्य एवं विकास के लिए आवश्यक तथा उचित है। किंतु कई बार कुछ ऐसी घटनाएँ हमारे सामने प्रस्तुत हो जाती हैं कि जिनसे विद्यालय प्रशासन एवं शिक्षा व्यवस्था तथा प्रबंधन पर विश्वास करना कठिन हो जाता है। प्रस्तुत लेख में इन्हीं कुछ बिंदुओं पर प्रकाश डाला गया है। आखिर कितने सुरक्षित हैं हमारे नौनिहाल विद्यालयों में!

एक प्रबुद्ध, विचारशील और समृद्ध देश के निर्माण का उत्तरदायित्व उन नागरिकों पर है जो सामाजिक-सांस्कृतिक समरसता एवं संवेदनशीलता के साथ पलते-बढ़ते हैं। विचारशीलता और समरसता के ताने-बाने को बुनने और बनाए रखने में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और इसीलिए शिक्षा मानवीय समाज की स्वाभाविक विशेषताओं के रूप में उभरी है। समाज के विकास के सभी चरणों में शिक्षा ने ही उनके निर्माण में योगदान किया है और यही कारण है कि शिक्षा भिन्न-भिन्न रूपों में सतत जारी रही। समाज की सबसे महत्वपूर्ण संस्था 'परिवार' से उपजा शिक्षा का अनौपचारिक स्वरूप आज 'विद्यालय' जैसी संस्था के पास पहुँच कर प्रत्येक वर्ग ने स्वीकार किया है और इसकी लोकप्रियता एवं स्वीकार्यता का आकलन इस बात से किया जा सकता है कि समाज के संपन्न से संपन्नतम तबके के लोग और सुविधावंचित एवं हाशिए से परे जीवन बिताने को बाध्य लोग सभी की चाहत यही रहती है कि उनके बच्चे स्कूली शिक्षा प्राप्त करें, उनके बच्चों को स्कूल जाने के अवसर अवश्य मिलें।

आखिर क्यों कोई भी अभिभावक अपने बच्चों को विद्यालय भेजना चाहता है?

यदि अभिभावकों की भाषा में ही बात की जाए तो स्वाभाविक रूप से उत्तर इस प्रकार है—

'हमारे बच्चे तमीज़ सीख लें।'

'पढ़ना-लिखना सीखें।'

'पढ़ना-लिखना सीखकर कुछ लायक बन जाएँ।'

'उठने-बैठने, बोलने-चालने का ढंग सीख लें।'

*प्राचार्या, मण्डल शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, सैक्टर-7, आर.के. पुरम, नयी दिल्ली

'कुछ बन जाएँ।'

'कुछ ज्ञान की बात सीख लें।'

कहने का तात्पर्य यह है कि अभिभावक अपने बच्चों को विद्यालय भेजते हैं तो इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हैं कि उनके बच्चे सभ्य, सुसंस्कृत, आत्मविश्वासी, आत्मनिर्भर बनेंगे और यह भी अपेक्षा करते हैं कि उनके बच्चों को विद्यालय में एक ऐसा माहौल मिलेगा जो —

- उनके लिए पूरी तरह से 'सुरक्षित' होगा।
- उनकी शारीरिक वृद्धि एवं विकास के आड़े नहीं आएगा।
- उनके मनोबल को घटाने का काम नहीं करेगा।
- उनको किसी भी तरह की भावात्मक, मानसिक और शारीरिक चोट नहीं पहुँचाएगा।
- उनके जीवन की सुरक्षा का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाएगा।

संक्षेप में कहें तो कहा जा सकता है कि कोई भी अभिभावक स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता कि 'विद्यालय' बच्चे की ज़िंदगी समाप्त कर देने का कारण भी बन सकता है। कई बार हमें विद्यालयों से यह समाचार मिलता है कि अध्यापक द्वारा कान खिंचाई करने पर बच्चे के कान से खून बह निकला, तो कभी चाँटा मारने पर आँख और गाल सूज गए, हाथ की अँगुलियों की हड्डियाँ चटक गईं और सबसे वीभत्स समाचार यह कि विद्यार्थी का जीवन ही चला गया।

विद्यालय से यातनालय और यातनालय से मृत्युगृह! कितना भयावह रूप हो गया है न आज की इस शिक्षा व्यवस्था का। शिक्षार्जन के उद्देश्य से भेजे गए बच्चे विद्यालयों में कितने सुरक्षित हैं? यह सिर्फ़ सरकार या प्रशासन की चिंता का विषय नहीं है, यह समूचे समाज की चिंता और सरोकार का विषय है। तो आइए मिलजुल कर इस विषय पर संवाद करते हैं। यह बात शुरू कहाँ से की जाए, क्या वह विद्यालय देहरी की भीतर जाने के बाद शुरू होता है या उससे भी पहले कई ऐसे पड़ाव हैं जहाँ उनकी सुरक्षा और चौकसी शुरू हो जानी चाहिए।

घर से विद्यालय की ओर प्रस्थान पहला पड़ाव या बिंदु है जहाँ बच्चों की सुरक्षा पर खतरा शुरू हो जाता है। बच्चे बस में जा रहे हैं, पैदल जा रहे हैं या फिर साइकिल-रिक्शा, वैन, खुद की साइकिल, ज़रिया कोई-सा भी हो, खतरा हर माध्यम से है, कैसे? तो ज़रा निगाह डालिए उस वैन पर जिसमें पहले से ही कई बच्चे ठुँसे हुए हैं और अब ये तीन बच्चे और चढ़ेंगे। पिठ्ठू की तरह इनकी पीठ पर बोझ लदा है, अपने शरीर को अंदर घुसाएँ या फिर अपने बस्ते को पहले अंदर पहुँचाएँ? अभी यह कशमकश चल ही रही है कि वाहन चालक अपनी ड्राइविंग कुशलता का लोहा मनवाने की गरज से गाड़ी चला देता है, उसने इस बात पर ध्यान देने की ज़रूरत ही नहीं समझी कि तीसरे बच्चे का एक पाँव अभी बाहर ही है। दो-तीन कदम तो घिसटता ही है उस नौनिहाल का पाँव और अंकिल-अंकिल, ड्राइवर भैया मेरा पैर-मेरा पैर की चीख-पुकार जब तक कँपकँपा नहीं देती तब तक 'वाहन चालक' समय पर विद्यालय पहुँचाने की ज़िद पर अड़ा गाड़ी चलाता ही रहता है।

अंदर बैठे बच्चों की चिल्लाहट का भी उस पर असर नहीं पड़ता। यह तो भला हो उन राहगीरों का जो चलती गाड़ी में घिसटते हुए बच्चे को देखकर अपनी संवेदनाओं के तार अपने जागरूक नागरिक होने के

दायित्व से जोड़ते हैं और दौड़कर वाहन चालक को रोकते हैं। इस तरह से एक बड़े हादसे को टालने में अपनी बड़ी भूमिका निभाते हैं।

वाहन चालक के लिए चलती गाड़ी के साथ बच्चे के पाँव का घिसटना कोई बड़ी बात नहीं है। वह बहुत ही मामूली से भाव रखकर कहता है, "नाहक लाल-पीले हो रहे हो। कोई जान थोड़ी ही गई है। ज़रा-सा पैर ही तो छिला है। अभी डिटॉल-शिटाल लगवा दूँगा।"

गोया कि 'जान जाने' पर ही सुरक्षा के बारे में सोचा जाएगा।

बस या वैन के दरवाज़े में हाथ का फँसना, नील या गुम चोट लगना यह तो रोज़ की बात है। क्योंकि 'जान नहीं गई है' इसलिए ये बातें अखबार की सुर्खियाँ नहीं बन पाती हैं। वैन या बस के संदर्भ में सिर्फ़ इतना भर नहीं और भी बिंदु हैं जो सुरक्षा व स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, जैसे कि नियमित सफ़ाई न होना, क्षमता से अधिक बच्चों को बैठाना ये दोनों बातें श्वसन तंत्र पर नकारात्मक असर डालती हैं और अंतत: बच्चों के स्वास्थ्य व जीवन दोनों ही पर खतरे की चेतावनी देती हैं।

अभिभावक प्रत्येक दिन वाहन चालक से बात करें और उसे याद दिलाएँ कि उसे सड़कों पर अपनी 'ड्राइविंग कुशलता' की बाज़ीगरी नहीं दिखानी है, बल्कि बच्चों को सुरक्षित विद्यालय लाना और पहुँचाना है।

अभिभावक थोड़ी-सी बचत के लालच में बच्चों की सुरक्षा को खतरे में न डालें और ठुँसी गाड़ी में अपने बच्चे न बैठाएँ।

यह तो बात थी बस/वैन/रिक्शाधारियों की। अब पैदल चलने वाले बच्चों की सुरक्षा के बारे में सोचेंगे तो पाषाण हृदय भी काँप उठेंगे। महानगर तो महानगर, छोटे शहरों में भी सड़क पर चलना और सड़क पार करना बहुत कठिन काम हो गया है। सड़क पर चल रहे बच्चे ही नहीं वयस्क बड़े-बूढ़े सभी का 'वाहन चालकों' की कृपा से सड़कों पर चलना कई कारणों से असुरक्षित हो गया है। पहला कारण तो फुटपाथ की अनुपलब्धता है। कहीं फुटपाथ हैं ही नहीं, जहाँ हैं वहाँ वे या तो पुरुषों के मूत्रालय बन गए हैं या फिर अतिक्रमण के डेरे बन गए हैं। दूसरा कारण वाहन चालकों का दृष्टिकोण। उनकी नज़र में पैदल चलने वाले 'बेचारे' हैं और 'बेचारों' को तो गरिमा से जीने का अधिकार तो जैसे होता ही नहीं है।

वाहन चालकों के नज़रिए के चलते ही पैदल चलने वाले बच्चों की सुरक्षा एक बहुत बड़ा सवाल बन गई है।

इस संबंध में विद्यालय प्रशासन अकेला कुछ नहीं कर सकता। सभी नागरिकों को अपनी-अपनी भूमिका सुनिश्चित करनी होगी। एक वाहन चालक के रूप में वे अपने कर्त्तव्यों और नियमों का पालन करें और एक राहगीर के रूप में स्वयं तो नियमों का पालन करें ही और जब भी किसी को सड़कों पर अधिक गति देखें तो तुरंत हिम्मत जुटाते हुए उसकी गलती को बोध कराकर हादसा रोकने में अपनी ज़िम्मेदारी निभाएँ।

घर से अब हम विद्यालय के भीतर पहुँच गए हैं। हम अभी भी निश्चिंत होकर राहत की साँस नहीं ले सकते कि हमारे बच्चे सुरक्षित हैं। यह देखिए प्रात: कालीन सभा आरंभ हो गई है, एक-आध बच्चे का

चक्कर खाकर गिर जाना साधारण-सी बात है। बस! बात इसलिए बड़ी नहीं बन पाई कि बच्चे की जान नहीं गई। सिर्फ़ मामूली-सी चोट आई है, या फिर बेहोश हुआ है। क्या जान जाने पर 'सोचना' शुरू होगा?

देर से आने वाले बच्चों को अलग कतार में खड़ा कर देना या सभी बच्चों के सामने उन्हें अपशब्द कहना, यह भी उनकी सुरक्षा से जुड़ा है। शारीरिक चोटें तो नज़रअंदाज़ नहीं की जातीं। बच्चे अभिभावक और अध्यापक द्वारा कब-कब मानसिक प्रताड़नाओं के शिकार होकर मानसिक स्वास्थ्य खो बैठते हैं, इस प्रकार के आँकड़ों का आकलन तो कभी किया ही नहीं गया।

हम अध्यापकों को सचेत रहना होगा कि बच्चों को अनुशासन और मानसिक रूप से मज़बूत बनाने के नाम पर हम उन्हें भावात्मक व मानसिक आघात पहुँचाने का जोखिम नहीं ले सकते।

प्रात:कालीन सभा के बाद बढ़ते हैं शौचालय की ओर। 'शौचालय' तो प्राकृतिक आवश्यकता को पूरा करने की जगह न बनकर अब 'हत्यास्थल' के रूप में सामने आ रहे हैं।

आइए जानते हैं कि शौचालय में सुरक्षा संबंधी प्रावधानों के अभाव में बच्चों को कहाँ-कहाँ किस बात से खतरा है—

- सबसे पहली बात तो शौचालयों का न होना और यदि हैं तो उनमें दुर्गंध व गंदगी का स्थायी वास। इसे किसी भी तरह से नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता। यह न समझिए कि इससे बच्चों की सुरक्षा को कोई खतरा नहीं। हम बच्चों को धीमी गति से ज़हर दे रहे हैं।
- दूसरी बात कमोड या सीट का आकार। शौचालयों में कमोड या सीट का आकार बच्चों की आयु, शारीरिक आकार के अनुपात से मेल खा रहा है या नहीं, क्या हम इस तरफ सोच पा रहे हैं। यह एक गंभीर मामला है। छोटे-छोटे बच्चों को मूत्र त्यागने की कोशिश में कई बार कमोड के अंदर गिरते भी देखा गया है, उनकी चीख-पुकार के बाद अध्यापक दौड़ी आती हैं, बच्चे को गंदगी में सना देखकर नाक भौं-सिकोड़ती आया को आवाज़ लगाती है, जब तक आया/सहायिका आती है तब तक बच्चा शारीरिक चोट के साथ-साथ ग्लानि व अपराध बोध की चोट सहता हुआ शर्म से हैरान-परेशान होता रहता है कि आखिर उससे गलती हुई कहाँ? अध्यापिका व आया के तानों और उलाहनों के साथ-साथ अभिभावक भी ताना मारते हैं कि 'सँभल कर नहीं जा सकते थे क्या?' कमोड में गिरने से छोटे-मोटे नील और गुमचोट तो पड़ी-ही-पड़ी अब इधर-उधर से तानों की बौछार से दिल भी छेद दिया गया। दर्द होता है तो होता रहे। यह समझने की चेष्टा भला हम और आप नहीं करेंगे तो कौन करेगा।

शौचालय के बाद अब बात करते हैं पेयजल की व्यवस्था है। हम अध्यापक साथी सभी अपने-आप से सवाल करें, क्या पेयजल स्थल जो भी व्यवस्था है व प्राथमिक स्तर के बच्चों के लिए सुविधाजनक है? क्या यह व्यवस्था छोटे-छोटे बच्चों की पहुँच के भीतर है? किसी दिन थोड़ा रुककर ध्यान से देखिए। नल की टोंटी ऊपर है। बच्चे उचक-उचक कर पानी पीते हैं। उचकने में एक तरफ गिरने का तो खतरा बना ही रहता है तो दूसरी ओर ओक लगाकर पीने से पानी की पूरी

धार कोहनी तक आती है और कोहनी से पानी बहने लगता है। यानि कि कलाई से कोहनी तक पूरी बाँह गीली हो गई। गर्मियों के दिन हैं तो बात बहुत गंभीर नहीं है पर सर्दियों में बच्चे का गीली बाँह के साथ पूरे दिन विद्यालय में रहना, उचित नहीं है। अकसर लोग कहते हैं — "अरे छोटा-मोटा बुखार, खाँसी-जुकाम तो होता ही रहता है।" नहीं जनाब! ऐसा कहकर हमें अपनी अदूरदर्शिता व संवेदनहीनता का परिचय नहीं देना है बल्कि 'पेयजल स्थान' की व्यवस्था के बारे में प्रत्येक दृष्टिकोण से सोचना होगा। बेहतर होगा कि बड़े और छोटे बच्चों के लिए अलग-अलग व्यवस्था हो और हर घंटे-दो-घंटे बाद वहाँ पर पोंछा लगाने की व्यवस्था की जाए। पानी फैला रहने की स्थिति में बच्चों के फिसलकर गिरने का डर बना रहता है।

शौचालय, पेयजल, प्रात:कालीन सभा के स्थलों के बाद बात करते हैं खेल के मैदान की। आप शायद प्रश्न करें कि क्या बच्चों को स्वतंत्र रूप से खेलने भी न दें। वहाँ भी निगरानी करने पहुँच गए तो बच्चे की आज़ादी का हनन नहीं होगा क्या?

यहाँ निगरानी से कहीं अधिक व्यवस्था संबंधी सावधानियों की बात की जा रही है। कुछ विद्यालयों में देखा है कि सीसॉ, फिसलपट्टी और पटरी झूला सब बहुत आस-पास लगा दिए जाते हैं। आप कल्पना करके देखिए कि पटरी झूले पर पेंग लेता हुआ बच्चा सीसॉ पर ऊपर-नीचे हुए बच्चों के बिल्कुल समीप है। आप कल्पना मात्र से सिहर उठेंगे।

हर दूसरे दिन बच्चे खेल के मैदान में दुर्घटनाओं का शिकार होते रहते हैं। हम यह सोचकर संतोष कर लेते हैं कि 'चलो जान नहीं गई। भगवान का शुक्र है।'

ध्यान रहे कि भगवान किसी रूप में भी है हमारी गलतियों को बहुत दिनों तक सहन करने वाला नहीं है। हमें सचेत रहकर खेल के मैदान की व्यवस्था के बारे में भी सोचना ज़रूरी है। इस संदर्भ में खेल उपकरणों के लिए सही स्थान का चयन, भूमि का समतल होना, काँच, कंकड़-पत्थर रहित होना ये सब बातें बहुत ज़रूरी हैं और वयस्क विद्यार्थियों व बारी-बारी से अध्यापकों का उत्तरदायित्व भी सुनिश्चित किया जाए कि वे मध्य अवकाश के दौरान बीच-बीच में निगरानी ज़रूर रखें। ये सब वे स्थान हैं जहाँ भिन्न कोणों से अधिक चौकन्नेपन की ज़रूरत है।

कुछ विद्यालय ऐसे हैं जो मुख्य राज्यमार्गों के पास ही बने हैं। सड़क के एक पार बस्ती है दूसरी पार विद्यालय है। सड़क पर दौड़ते वाहन बच्चों की गतिशीलता से प्रतिस्पर्धा करते हुए दौड़ते ही रहते हैं।

यद्यपि सड़कों पर चेतावनी लिखी रहती है कि 'सावधान! धीमें चले। आगे स्कूल है।' पर अधिकांश वाहन चालकों को सारी तेज़ी और समय पाबंदी का भाव सड़कों पर ही जाग्रत होता है वे अपनी गति पर काबू नहीं कर पाते और उनकी गति का शिकार बनते हैं मासूम बच्चे। मुझे एक भयानक हादसा याद आ रहा है। यहाँ उसका उल्लेख करना प्रासंगिक प्रतीत होता है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के पश्चिमी इलाके में पंजाबी बाग से पीरागढ़ी फिर नाँगलोई को पार करता हुआ मुख्य राज्य मार्ग हरियाणा के बहादुरगढ़ को पहुँचता है। बहादुरगढ़ से पहले दिल्ली का आखिरी गाँव है मुण्डका व घेवरा। बस यहीं का दर्दनाक हादसा आपके साथ साझा करती हूँ।

मुण्डका के बच्चों की औपचारिक शिक्षा की ज़रूरत को पूरा करने के लिए सड़क पार सरकारी विद्यालय खुला। कुछ ही दिनों में उसके अध्यापकों की कर्त्तव्यनिष्ठा ने विद्यालय की लोकप्रियता को बढ़ा दिया। मुण्डका के अभिभावकों ने गहरे विश्वास के साथ बच्चों को विद्यालय भेजने में कभी कोताही नहीं बरती पर एक दिन ऐसा भी आया कि अभिभावकों ने उसकी विद्यालय में बच्चों को भेजने से मना कर दिया। ऐसा अचानक क्या हुआ? विश्वास के पौधों को कौन चर गया? दरअसल हुआ क्या! राज्यमार्ग पर दौड़ते एक ट्रक ने सड़क पार करते बच्चों के झुंड पर अपना करतब दिखाया। कुछ घायल हुए और एक बच्चे का जीवन खिलने से पहले ही मुरझा कर खत्म हो गया?

यहाँ दोषी कौन था? इस पर चर्चा करने से लाभ अधिक नहीं है। लाभ तो इस बात में है कि क्या-क्या प्रयत्न किए जा सकते थे और किए जा सकते हैं?

बच्चों को घर बैठा लेना उपाय नहीं है। अगर वे इस सड़क पर आज नहीं तो कभी न कभी तो आएँगे ही। तो क्या उपाय है? अभिभावकों और अध्यापकों की साझेदारी से बहुत ही रचनात्मक समाधान निकलकर सामने आया। गहन चर्चा व विमर्श से यह बात सामने आई कि गाँव के वे लोग जो अब दिहाड़ी या काम-काज पर नहीं जाते, वे दिनवार अपनी-अपनी बारी लगा लें और पाँच-पाँच के समूह में बच्चों को सड़क पार करने में मदद करें। गाँववासियों ने एक अघोषित-सी चैक पोस्ट भी बना ली थी। आवश्यकता से अधिक गति वाले वाहनों को भी रोका जाने लगा और इस तरह से भविष्य में होने वाली दुर्घटनाओं की संभावनाओं को कम करने में भरपूर योगदान दिया।

बच्चे हमारे समाज की अमूल्य निधि हैं। यह एक कोरा-सा वाक्य नहीं है। हमें इस वाक्य के मर्म को समझते हुए बच्चों की सुरक्षा को लेकर बहुत चौकस रहना होगा। जब भी बच्चों की सुरक्षा पर खतरा मँडराता है, सीसीटीवी लगाने की फरियादें सत्ता व व्यवस्था के गलियारों में गूँजने लगती हैं। आप स्वयं से सवाल करिए कि क्या सीसीटीवी लगने से दुर्घटना होने से बचा सकता है? हम खुद क्यों नहीं उन संभावनाओं की खोज करें जो दुर्घटनाओं की संभावनाओं को कम बहुत ही कम कर दे।

उम्मीद करते हैं कि हमारे मानस और दिल में बच्चों की सुरक्षा को लेकर ऐसा भाव जाग्रत होगा जिसकी चौकसी व चौकन्नापन बच्चों को निर्भीकता से खेलने-कूदने, आने-जाने, पढ़ने-लिखने की आज़ादी देगा।